।। श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ।।
।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ।।
ब्रह्मचारी
श्रीगिरिधारिशरणाष्टकं
स्तोत्रम्

* श्रीसर्वेश्वरो जयति *

॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारि-शरणाष्टकं स्तोत्रम्

प्रणेताः--

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

श्री ''श्रीजी'' महाराज

प्रकाशक--

विद्वत्परिषद्

अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ

सलेमाबाद, पुष्करक्षेत्र, किशनगढ जि. अजमेर (राज०)

वि. सं. २०७३ निम्बार्काब्द ५०११

ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी

जयपुर राज्य के सवाई माधोपुर के निकट लसोड़ा ग्राम में महोबतरामजी नामक एक सनाढ्य ब्राह्मण रहते थे। उनके नन्दराम, गणेशराम और अमरनाथ–ये तीन पुत्र और फतेकुँवरि एवं चन्द्रकुमारी दो पुत्रियाँ थीं। बचपन में ही पिता का स्वर्गवास हो गया था। व्यापार–वाणिज्य का कार्य करते थे। उस समय बैलों पर इधर–उधर सामान ले जाया करते थे। अतः महोवतरामजी भी बहुत से बैल रखते थे। उन बैलों में एक अग्रणी बैल रहता था, जिसे धौंसा का बैल कहा करते थे। उसके पीछे–पीछे सारा टांडा चलता था।

एक दिन वर्षा ऋतु में सभी बैल जङ्गल में चर रहे थे। महोवतरामजी का बिचला पुत्र गणेशराम उनकी देखभाल कर रहा था। दैवयोग से ऐसा हुआ कि एक सिंह आ पहुँचा और उसी अग्रणी धौंसा के बैल को मार दिया। सायंकाल जब घर आये और घरवालों को यह खबर सुनाई तो उनको दुःख होना स्वाभाविक था, किन्तु कर क्या सकते थे? होना था सो हो गया। यह देखा जाता है कि जहाँ सिंह रहते हैं, वहाँ के निवासियों में भी कुछ वीरता रहती है। कभी–कभी वहाँ की स्त्रियाँ भी सिंह को मार देती हैं। गणेशराम की भौजाई भी उन्हीं स्त्रियों के समान वीर–स्वभाव वाली थी। उसके मुँह से निकल गया कि तुम्हारे रहते हुए ही बैल को सिंह मार गया, तुम्हें पानी

में डूबकर मर जाना चाहिए। गणेशराम के हृदय में उस वीर-बाला के वचन तीर के समान चुभ गये। उसने सोचा, वास्तव में यह मेरी कायरता ही कही जायगी, अब तो डूब मरना ही अच्छा है। लसोड़ा से एक मिल दूरी पर ही पर्वत के बीच झोझा की झील थी। उसी क्षण वहाँ जाकर गणेशराम उसमें कूद पड़ा, किन्तु भगवान् जिसे बचावे वह मौत के मुँह में भी पहुँचकर जी सकता है। गणेशराम नहीं मरा। सुनते हुं, उन्हें एक शालग्राम की मूर्ति मिल गई। देखने वाले अन्य लोगों ने गणेशराम को झील से बाहर निकाल लिया। उसके पैर में चोट अधिक आ गई थी। बहन का घर निकट था, निकालने वालों ने वहाँ पहुंचा दिया। मरहम-पट्टी हुई। पैर भी कुछ दिन में ठीक हो गया। भाई आदि घर ले जाना चाहते थे, किन्तु गणेशराम अपने ठाकुर को लेकर वृन्दावन आगया।इस समय इनकी आयु लगभग १७-१८ वर्ष की थी।

गणेशराम का जन्म विक्रम सं. १८५५ माघ शुक्ल ५ को हुआ था। १८७२ में वृन्दावन में वंशीवट प्राचीन और विशेष महत्वशाली स्थल माना जाता था। गणेशराम सीधा वहाँ ही पहुँचा, जैसे कि किसी जानकार ने पहँचा दिया हो। वहाँ एक बलदेवदासजी अच्छे महात्मा भजन करते थे। गणेशराम भी दण्डवत्-प्रणाम करके उनके समीप ही बैठ गया। थोड़े समय में पंश्चात् बलदेवदासजी के पूछने पर गणेशराम ने अपनी सच्ची-सच्ची सारी घटना कह सुनाई और दीक्षा के लिए प्रार्थना की।

बलदेवदासजी ने भी उसकी वृत्ति देखकर दीक्षा-संस्कार कर गोपाल-मन्त्र का उपदेश कर दिया। गणेशराम अब ब्रह्मचारी गिरिधारीशरण बन गया। गुरुजी ने कहा कि तुम्हें ठाकुरजी की मूर्ति जहाँ मिली है, वहाँ ही जाकर इस मन्त्र का जाप करो, भगवान् का साक्षात्कार हो जायगा।

श्रीगुरुदेव की आज्ञानुसार श्रीब्रह्मचारीजी अपनी जन्मभूमि वापिस आगये, किन्तु घर नहीं गये, एकान्त में बैठकर १२ वर्ष तक गोपाल-मन्त्र का निरन्तर जप किये। भगवान् भी उन पर प्रसन्न हो गए। आपने पैदल ही तर्थाटन किया।,

ईशरदा के राजा रघुवीरसिंहजी की जोधीरानी (डाँगरथा या केरोठवाली) के सरदारसिंह और कायमसिंह दो राजकुमार हुए। श्रीब्रह्मचारीजी फिर एकान्त श्रीवृन्दावन में ही निवास करने लगे। आप पूरे त्यागी थे। वि. सं. १९१४ में गदर हुआ। ग्वालियर नरेन्द्रराव जीवाजी का राज्य उनसे हस्तान्तरित हो गया। वे श्रीब्रह्मचारीजी के चरणों में गिर पड़े। आपने आशीर्वाद दिया, राज्य फिर उनके अधिकारी में आ गया। राव जीवाजी ने श्रीब्रह्मचारीजी के लिए एक कुञ्ज बनवाकर कृतज्ञता प्रकट की। वह छोटी कुञ्ज कहलाती है। उसमें श्रीब्रह्मचारीजी के भजन करने की गुफा भी है।

राव जीवाजी के सन्तान नहीं थी, इसलिए राज्य मिलने पर भी वे अनमने रहते थे। गुरुदेव श्रीब्रह्मचारीजी से प्रार्थना की। इनके आशीर्वाद से राव जीवाजी के राजकुमार माधवराव का

जन्म हुआ। प्रसन्नता में ग्वालियर नरेश ने १२००० रु. वार्षिक के जागीर का पट्टा श्रीब्रह्मचारीजी को भेंट कर दिया। उन्हें क्या करना था? वे तो साधु-सन्त, अभ्यागत, भूखे-प्यासों की सेवा में ही लगाते रहे। परमार्थ जहाँ होता है, अपने आप लक्ष्मी खिंची हुई चली आती है। कितने ही राजा-महाराजा, धनी-मानी, सेठ-साहूकार आने लगे। मनमानी भेंट चढाने लगे। ब्रह्मचारीजी ने सोचा कि यह धन भगवत् सेवा में लगाया जाय।

आपने वि. सं. १९१७ में ठाकुर श्रीराधागोपालजी, श्रीनृत्यगोपालजी और श्रीहंसगोपाल की प्रतिष्ठा करवाई। श्रीब्रह्मचारीजी का मन्दिर वृन्दावन में एक आदर्श दर्शनीय मन्दिर माना जाता है।

ईशरदा जयपुर के राजकुमार श्रीकायमसिंहजी अपनी माता जोधी के सहित श्रीवृन्दावन आये। ब्रह्मचारीजी के दर्शन किये। कायमसिंहजी उस समय लगभग १७-१८ वर्ष के थे। उनकी माता ने उन्हें श्रीब्रह्मचारीजी से वैष्णवी दीक्षा संस्कार करा दिया था। ईशरदा से उनकी खटपट चल रही थी। श्रीब्रह्मचारीजी ने कहा-चिन्ता मत करो, ईशरदा क्या तुम्हें जयपुर की राजगद्दी मिलेगी? हुआ भी ऐसा ही।

वि. सं. १९३७ आश्विन कृ. नवमी को कायमसिंहजी जयपुर के राजा बन गये और इनका नाम भी गुरुदेव का रक्खा हुआ "माधवसिंह" ही प्रसिद्ध हो गया।

श्रीमाधवसिंहजी जयपुर के नरेश होने के अनन्तर

श्रीगुरुदेव के दर्शनार्थ श्रीवृन्दावन आये। यहाँ के जयसिंह घेरा के ठाकुर श्रीनृत्यगोपालजी और चम्पावत वाली कुंजस्थ श्रीचन्द्र-विहारीजी महाराज की सेवा के लिए ८० रु. मासिक की सेवा जयपुर राज्य की ओर से नियत कर दी। उनकी इच्छा हुई कि एक विशाल मन्दिर बनाकर श्रीगुरुदेव के अर्पण करूँ जिसमें श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की पद्धति के अनुसार श्रीराधागोपालजी की सेवा होती रहे। ७-८ वर्ष पश्चात् उस मन्दिर का निर्माण कार्य आरम्भ हो गया। वि. सं. १९४४ एवं ४५ में मन्दिर बनना प्रारम्भ हुआ, किन्तु राज-कर्मचारियों की शिथिलता से इसकी पूर्ति बिलम्ब से हुई। आप एक बार छटीकरा ग्राम की ओर जङ्गल में जा बैठे, वहाँ ही एक गोपालगढ के नाम से सुन्दर मन्दिर बन गया। वि. सं. १९४६ में यहाँ श्रीगिरिधारीगोपालजी की प्रतिष्ठा हुई। श्रीवृन्दावन-परिक्रमा राजपुर में दाऊजी का मन्दिर आदि कई एक छोटे-बड़े मन्दिरों का निर्माण हुआ। उधर ही एक बगीचा जगन्नाथजी के नाम का लगवाया था।

आपकी प्रेरणानुसार बरसाने में भी गिरिशिखर पर श्रीमाधवसिंहजी ने एक सुविशाल सुन्दर मन्दिर बनाया। वहाँ भी इसी प्रकार तीन मन्दिर और आचार्य-पञ्चक की स्थापना की गई। जयपुर, ग्वालियर के अतिरिक्त ओल (अवध), कासगंज, गभानागढ, कांकेर, हाथरस तथा राणा श्रीजंगबहादुर नेपाल आदि कई एक नरेश आपके शिष्य बने एवं साम्प्रदायिक धार्मिक सेवा की। यह कहना अयुक्त न होगा कि १९ वीं-बीसवीं

शताब्दी में आप एक परम तपोनिधि, भगवद्विभूति ही प्रकट हुए। विशेष पढे-लिखे नहीं थे, न व्याख्याता ही थे, केवल आदर्श आचरण और श्रीगोपाल-मन्त्र जप के प्रभाव से ही श्रीपंचमजार्ज के शुभागमन पर आयोजित देहली दरबार में भी आपका भव्य स्वागत हुआ था। इस प्रकार से अनुकरणीय आदर्श स्थापित कर वि. सं. १६४३ फाल्गुन शु. १५ के दिन श्रीगोपालगढ में ही आपने ऐहिक लीला का संवरण किया।

ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी का पावन चरित

भारतवर्ष की सुरम्य पवित्र धरा पर समय-समय पर विशिष्ट महानुभावों का प्राकट्य होता है। जिनके उत्तम जीवन से पावन शिक्षा प्राप्त होती है, ऐसे परमोत्तम स्वरूप ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी थे, जो श्रीवृन्दावनधाम की सुभग कुञ्जों में निवास करते हुए स्वकीय आराध्य श्रीराधामाधव भगवान् की दिव्य उपासना में तल्लीन रहते थे और ये निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रख्यात महात्मा थे।

जयपुर के माधोसिंहजी इन्हीं ब्रह्मचारीजी से दीक्षित थे तथा इनकी सर्वविध परिचर्या में लगे रहते थे।

एक दिन का प्रसङ्ग है-श्रीब्रह्मचारीजी ने कहा अरे! माद्या तूं जयपुर का राजा होगा और वह भी छ मास मध्य में ही जयपुर जाकर वहाँ की व्यवस्था का दायित्व तुझ पर होगा।

इस कथन को श्रवण कर मोधोसिंह ने कहा हे महात्मन्! मेरे भाग्य में ऐसा कैसे सम्भव है। वस्तुतः श्रीब्रह्मचारीजी का यह शुभाशीर्वचन पूर्णतः फलीभूत हुआ, यथार्थ में "यन्नवे भाजने लग्ने संस्कारो नान्यथा भवेत्" इस वचनानुसार माधोसिंहजी कतिपय दिवस पश्चात् ही सवाई श्रीमाधोसिंहजी जयपुर नरेश के रूप में प्रसिद्ध हुए।

जयपुर नरेश के रूप में जब श्रीब्रह्मचारीजी के समीप वृन्दावन पहुँचे और साष्टाङ्ग करके निवेदन किया कि आपश्री के

शुभाशीर्वाद से मुझे राज्य पद प्राप्त हुआ अतः अब मुझे सेवा का अवसर प्रदान करें। जो भी आदेश मिलेगा उसको पूर्ण करने की आपश्री की कृपा प्रसाद से ही चेष्टा करूँगा।

श्रीब्रह्मचारीजी ने सवाई माधोसिंहजी के भावपूर्ण विचार श्रवण कर आदेश दिया कि श्रीवृन्दावन और बरसाना पहाड़ी पर अतीव भव्य मन्दिर का निर्माण करावो और जिसके सदृश और कोई मन्दिर न हो।

मध्य में श्रीराधामाधव भगवान् एवं दोनों ओर श्रीहंस भगवान् तथा श्रीसनकादिक और श्रीनारद-निम्बार्क-श्रीनिवासाचार्य जी की सुन्दर प्रतिमायें सुशोभित हो। इस आदेश को श्रवण कर उभय स्थलों पर निर्माण हेतु नरेश ने कहा अवश्य ही आपके आदेश का पालन होगा। वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही सवाई माधोसिंहजी ने शीघ्र ही उभय स्थलों पर मन्दिर का निर्माण कराया मन्दिर के विशालतम खम्बों के लिए मथुरा से वृन्दावन पर्यन्त रेल्वे लाइन का स्वयं उन्होंने सम्पूर्ण व्यय किया।

तत्कालिक ग्वालियर नरेश भी आपश्री के शिष्य थे। उन्होंने भी श्रीब्रह्मचारीजी की भावनानुसार वंशीवट के सन्निकट माधव विलास मन्दिर के रूप में यहाँ उसी प्रकार का भव्य मन्दिर का निर्माण तथा भगवद्विग्रह एवं आचार्य पञ्चायतन विग्रह प्रतिष्ठापित कराये।

यथार्थ में ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी का अतीव श्रेष्ठतम चरित है। यहाँ संक्षेप में जिस प्रकार अवगत हुआ उसे प्रस्तुत किया गया है।

--श्रीराधासर्वेश्वरशरदेवाचार्य

ब्रह्मचारि-श्रीगिरिधारि-शरणाष्टकं स्तोत्रम्

(१)

यशस्वी गिरिधारी च ब्रह्मचारी महाव्रती।
वृन्दावननिवासी स जयतीह सदा भुवि।।

जिनका सुयश सर्वत्र परिव्याप्त हैं जो प्रबल व्रतानुगामी है। वृन्दावन में निवास करने वाले ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी की इस जगत् में सदा ही उत्तम जय हो।।१।।

(२)

निम्बार्कसम्प्रदायी वै युग्माऽङ्घ्रिसमुपासकः।
जयति सर्वदा प्रेष्ठो राधामाधवजापकः।।

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के परम अनुयायी श्रीयुगलराधामाधव के श्रीचरणकमलों की उपासना में अभिरत और उन्हीं का सतत जाप करने वाले अतिश्रेष्ठ ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी की सदा जय हो।।२।।

(३)

जयपुरनृपश्रेष्ठ-श्रीमाधोसिंहसद्गुरुः ।
सद्भिश्चारु सदा पूज्यो जयति व्रजभावुकः।।

जयपुर के महाराजा सवाई श्रीमाधवसिंहजी के जो गुरु रहे है और सन्त-महात्माओं के द्वारा भली प्रकार प्रपूजित रहे हैं। व्रजधाम में भावना रखने वाले ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी की सदा जय हो।।३।।

(४)

संकल्पसिद्धमेधावी विद्वज्जनप्रपूजितः।
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो विप्रो जयत्यानन्दसम्प्रदः।।

परम मेधावी संकल्पसिद्ध विद्वद्जनों के द्वारा प्रपूजित गोपीचन्दन से ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करने वाले सबको आनन्द देने में तत्पर विप्रवंशोद्भव ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी की जय हो।।४।।

(५)

राधाकृष्णपदाम्भोज-ध्यानलीनो वरप्रदः।
गोपालमन्त्रराजस्य जापको जयतीह च।।

श्रीराधाकृष्ण भगवान् के चरणारविन्दों में ध्यानमग्न उत्तम वरदायक श्रीगोपालमन्त्रराज के जाप करने में तत्पर एवंविध ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी की इस जगत् में जय-जयकार हो।।५।।

(६)

यमुनाऽम्भः सदासेवी यमुनास्नानतत्परः।

प्रपन्नरक्षको भक्तो जयति हरिचिन्तकः।।

श्रीयमुनाजी के निर्मल जल का पान करने वाले और श्रीयमुनाजी में ही स्नान करने में लगे हुए और शरणागत जनों की रक्षा करने वाले श्रीहरि के चिन्तन में निमग्न परमभक्त ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी की सब समय जय हो।।६।।

(७)

माधवमन्दिरे दिव्ये धाम्नि वृन्दावने सदा।
मन्त्रानुष्ठानसम्पन्नो जयति खलु पावनः।।

दिव्यधाम वृन्दावनस्थ राधामाधव मन्दिर में सदा ही श्रीगोपालमन्त्रराज के अनुष्ठान में प्रवृत्त जिनका परम पावन स्वरूप है ऐसे ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी की सदैव जय हो।।७।।

(८)

कदम्ब-कदलीकुञ्जे युग्माङ्घ्रिस्मरणे रतः।
एवञ्च ब्रह्मचारी वै जयति नित्यदा भुवि।।

कदम्ब कदली आदि कुञ्जों में बैठकर अपने आराध्य का स्मरण करने में अभिरत ऐसे ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी की नित्यप्रति सर्वत्र जय-जय हो।।८।।

(९)

राधामाधवपादाब्जभक्तिदमष्टकं प्रियम्।

राधासर्वेश्वराद्येन शरणान्तेन निर्मितम्।।

श्रीराधामाधव पराभक्ति को प्रदान करने वाला रुचिकर यह अष्टक स्तोत्र जिसकी रचना श्रीराधामाधव भगवान् की कृपा से हुई है।।६।।

*

(१)

ब्रह्मचारी गिरिधारी,-शरण प्रभू के आप।
वृन्दावन निवसत सदा, करत मन्त्र का जाप।।

(२)

अतुलित महिमा आपकी, वचन-सिद्धि तत्काल।
भक्त मनोरथ पूर्ण हो, जन-जन होत निहाल।।

(३)

गोपालमन्त्रराज का, अनुष्ठान व्रत ठान।
ब्रह्मचारी गिरिधारी, किया सुदर्शन ध्यान।।

(४)

निम्बार्क सिद्धान्त के, परम प्रचारक जान।
राधामाधव ध्यान रत, सदा भजन भगवान।।

(५)

जयपुर नरेश सवाई,-माधोसिंह गुरुदेव।
करत वन्दना भाव भर, श्रीचरणों की सेव।।

(६)

यमुना जल पावन सुभग, प्रतिदिन करत सुपान।
कदली-कदम्ब कुञ्ज में, प्रभु आराधन ध्यान।।

(७)

राधा राधा रटत नित, कुञ्जविहारी लाल।
अन्तर मन से सतत ही, भजन करत प्रतिपाल।।

(८)

चन्दन चर्चित भाल है, तुलसी कण्ठी माल।
ऊर्ध्वपुण्ड्र द्वादश तिलक, जीवन परम निहाल।।

(६)

भावुक जनता दरश हित, आवत श्रीवनधाम।
प्रणमत पुनि२ शास्त्रविधि, कृपा करत निष्काम।।

(१०)

माधवविलास भवन में, मन्दिर अनुपम जान।
सुभग शोभित गिरिधारी,-शरण प्रकाशित भान।।

(११)

वृन्दावन की शुभ धरा, कुञ्ज-निकुञ्ज महान।
कलरव करत विहग वृन्द, व्रज भक्तों की खान।।

(१२)

अति विरक्त ब्रह्मचारी, जिनका सुयश अपार।
भावुक जन प्रणमत सदा, निज मानस अवधार।।

(१३)

चलो चलो श्रीवन धरा, दर्शन हेतु आज।
राधासर्वेश्वरशरण, शोभित तहं व्रजराज।।

*
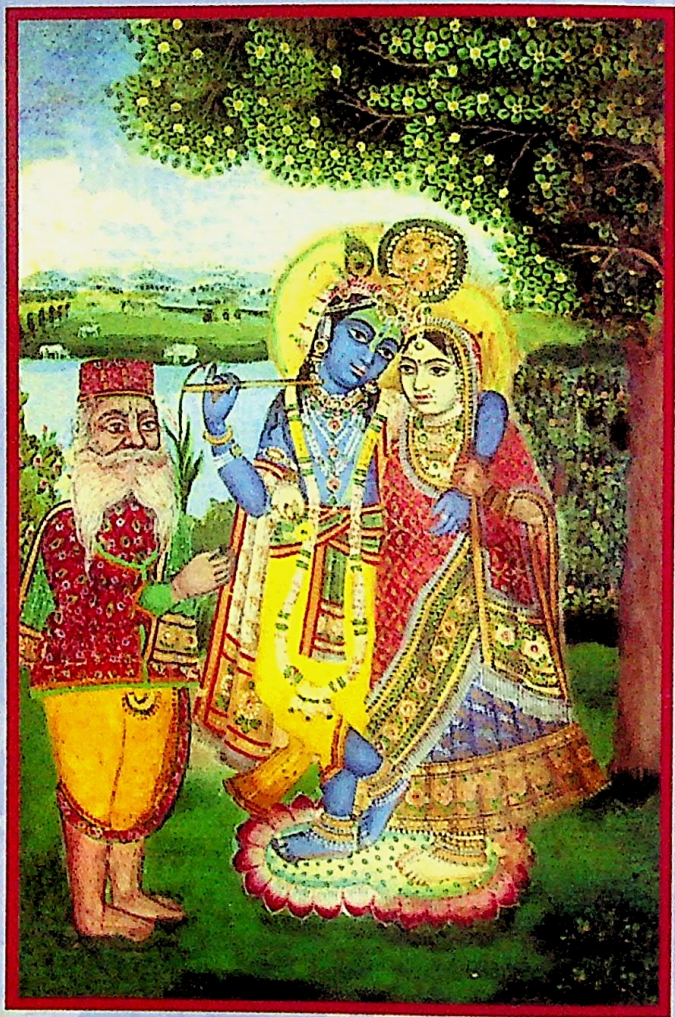
श्रीवृन्दावन में अपने आराध्य
युगल श्रीराधाकृष्ण भगवान् को करबद्ध प्रणाम
करते हुए ब्रह्मचारी श्री गिरिधारीशरणजी महाराज